आत्म-साधना और आचार्य श्री

☐ डॉ० प्रेमचन्द रांवका

भारतीय आत्म साधक मनीषियों ने अपनी उत्कट त्याग, तपस्या एवं साधना से प्रसूत अनुभवों से यह सिद्ध किया है—

नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं लोके, मुक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

इस संसार में प्रथम तो नर-जन्म पाना ही दुर्लभ है और यदि किन्हीं सुकृतों से नर-भव पा भी लिया तो विद्या प्राप्ति और भी दुर्लभ है, यदि विद्वान् भी बन गये तो काव्य-सृजन दुर्लभ है, यदि ऐसा भी हो जाय तो इस संसार से आवागमन से सदा-सदा के लिये मुक्ति प्राप्त करना तो अत्यन्त ही दुर्लभ है।

यह सुनिश्चित है कि ८४ लाख योनियों में भटकते-भटकते मानव जीवन की प्राप्ति उसी प्रकार दुर्लभ है, जिस प्रकार चौराहे पर/राजमार्ग पर स्वर्ण राशि का मिलना अत्यन्त कठिन है। इसीलिये संत भक्त कवयित्री मीरा ने गाया—'का जाणूं कुछ पुण्य प्रगटा मानुषा अवतार।' परन्तु उसका अर्थ यह नहीं कि दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति के लिये क्यों प्रयत्न किया जावे—प्रयत्न तो दुर्लभ वस्तु के लिये ही होता है।

हमें किन्हीं पूर्वोदय पुण्य कर्मों से मानव जीवन मिला है तो इस जीवन के प्रति पल-प्रतिक्षण का सदुपयोग आवश्यक है। क्योंकि मानव जीवन ही अन्य सब गतियों से श्रेष्ठ है—आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये क्रियाएँ तो मनुष्य और पशु दोनों करते हैं, परन्तु आत्म-साधना परम धर्म ही ऐसा है जो मानव को प्रभु से भिन्न करता है। इस दुर्लभ मानव जन्म को प्राप्त करने के लिये देवता भी लालायित रहते हैं। क्योंकि इस जीवन के माध्यम से ही तप, त्याग द्वारा अचल सौख्य धाम प्राप्त किया जा सकता है। इसलिये 'छह ढाला' के रचयिता कविवर श्री दौलतरामजी कहते हैं—

"दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे।
यह नर भव फिर मिलत कठिन है, सो सम्यक्मती होवे॥"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म-दर्शन में आत्म-साधना के लिये कोई निश्चित समय की सीमा निर्धारित नहीं है। यद्यपि भारतीय संस्कृति में मनुष्य की १०० वर्ष की आयु मानकर २५-२५ वर्ष के अन्तराल से चार आश्रमों का निर्धारण कर चार पुरुषार्थों की प्राप्ति की बात कही गयी है, कविवर कालिदास कहते हैं।

"शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां, यौवने विषयेषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां, योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।"

परन्तु जैन कवि कहता है—

"बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी रत रह्यो।
अर्द्ध मृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे अपनो।।'

जैन संस्कृति में आत्म-साधना के लिये कोई आयु का बन्धन नहीं है। बाल्यावस्था में भी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग हो जाता है। जैन धर्म के तीर्थंकर आचार्य साधु-साध्वियों का जीवन इस तथ्य का जीवन्त प्रमाण है। प्रातः स्मरणीय पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ने तो १० वर्ष की अत्यल्प आयु में मुनि दीक्षा धारण कर आत्म-साधना के कठोर मार्ग का अवलम्बन लिया और २० वर्ष की प्रारम्भिकी युवावस्था में आचार्य पद ग्रहण कर आत्म कल्याण के साथ समाज को भी सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया।

"स जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः कोवा न जायते।। पंचतंत्र।।"

आचार्य श्री वस्तुतः कुल दीपक थे। जैन कुल नहीं, मानव कुल के, इसीलिये वे मानवोत्तम थे। नर-जन्म की सार्थकता को उन्होंने अनुभूत किया, अपनी आत्म-साधना से प्राप्त फल का आस्वादन उन्होंने हमें भी कराया—जो उनके विशाल कृतित्व के रूप में विद्यमान है। ऐसे आत्म-साधकों के दर्शन व सान्निध्य बड़े भाग्य से मिलते हैं—

"साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूताः हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थः, साधुः सद्यः समागमः।।
चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्र चन्दनयोर्मध्ये, शीतला साधु संगतिः।।'

जैन धर्म की सामाजिक व्यवस्था की सबसे बड़ी देन 'चतुः संघ' की स्थापना है। जैनचार्यों ने साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका को चतुःसंघ का

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम दिया है। जहाँ ये चारों अस्तित्वशील हैं, धर्म तीर्थ प्रवाहमय रहेगा। साधु-साध्वी त्यागी वर्ग है, श्रावक-श्राविका गृही हैं। जैन धर्म के पथ में ये दो वर्ग बराबर रहते हैं। जैसे नदी दो तटों के बीच बहती हुई समुद्र तक चली जाती है, वैसे ही धर्म के ये दो तट हैं। इनके द्वारा प्रवाहित हुआ धर्म परम धाम सिद्धालय तक पहुँच जाता है। जहाँ साधु-साध्वीगण हैं वह समाज आदर्श रूप होगा। साधु-स्वयं आत्म-साधक बन समाज को भी उस ओर प्रेरित करता है। इस दृष्टि से साधु-समाज दोनों मिलकर राष्ट्र की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उन्नति में भागीदार होते हैं।

पं. आशाधरसूरि 'सागार धर्मामृत' में कहते हैं—आत्म-साधना के मार्ग में सज्जनों को प्रेरित करें। जैसे पुत्र के अभाव में वंश के चलाने के लिये दत्तक पुत्र लिया जाता है, उसी प्रकार धर्म संघ संचालन के लिये त्यागी-साधुओं की आवश्यकता है। क्योंकि 'न धर्मों धार्मिकैर्विना'—धार्मिक समाज के बिना धर्म की अवस्थिति नहीं। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर आज तक साधु व समाज की अव्याबाध अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही है। और जब तक दीक्षा-शिक्षा की परम्परा समाज में चलती रहेगी, धर्म भी अव्याबाध गति से चलता रहेगा।

भारतीय धर्म-दर्शनों में—चार्वाक के 'ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्, भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत:' को छोड़कर—सभी दर्शनों में आत्म-ज्ञान को इतर भौतिक ज्ञानों से सर्वोपरि व सर्वश्रेष्ठ माना है। उपनिषद् तो आत्म-ज्ञान के ही विवेचक ग्रंथ हैं। 'आत्मानं विद्धि' प्रमुख सूत्र है। नीतिकार कहते हैं—

"लब्धा विद्या राजमान्या तत: किं, प्राप्ता सम्पद्वैभवाद्या तत: किम्।
भुक्ता नारी सुन्दराङ्गी तत: किं, येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।।"

याज्ञवलक्य ऋषि से मैत्रेयी ने निवेदन किया—भगवन्! जिस वस्तु को आप छोड़ रहे हैं, क्या उससे हमारी आत्मा का हित हो सकता है? यदि नहीं तो हम उसे क्यों ग्रहण करें? हम भी आपके साथ ही आत्म-साधना में रहेंगे। आ. वादीभसिंह कहते हैं—

"कोऽहं कीदृग्गुण: क्वत्य: किं प्राप्य: किं निमित्तक:।
इत्यूहं प्रत्यूहं नो चेदस्थाने हि मतिर्भवेत्।।"

जो मनुष्य प्रात: एवं रात्रि को सोते समय (त्रिकाल संध्या, पांच बार नमाज) प्रतिदिन इस प्रकार अपनी अवस्थिति पर विचार करते हैं, उनकी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मति उन्मार्गगामी नहीं होती—'गीता' में कृष्ण भी आत्म-साधना की महत्ता बताते हैं—

"उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैवात्मनो बन्धु रात्मैवरिपुरात्मनः ।।"

आत्म ही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय है। आत्म-साधना में ज्ञान और भक्ति दोनों सहायक हैं। 'ज्ञानमेव पराशक्तिः'। अज्झमणमेवझाणं—ज्ञान/स्वाध्याय तप है। स्वाध्यान्मा प्रमदः। ज्ञान/ध्यानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते क्षणः। जिस प्रकार धागे सहित सुई कहीं खोती नहीं, वैसे ही ज्ञान युक्त आत्मा। संसार में भटकता नहीं है। ज्ञानावरणादि कर्मों का क्षय स्वाध्याय से ही होता है।

आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने अपने महनीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व के द्वारा आत्म-साधना के मार्ग को साधु और श्रावक दोनों के लिये प्रशस्त किया। अपने सुदीर्घ तपस्या एवं त्याग से उन्होंने आत्म-साधना के उच्च आयाम को पाकर अपने प्रवचनों एवं साहित्य-लेखन द्वारा जन-सामान्य को सम्बोधित कर सन्मार्ग पर लगाया। उनकी 'प्रार्थना-प्रवचन' पुस्तक में आत्म-साधना हेतु ज्ञान एवं भक्ति के माध्यम से पदे-पदे पाठकों को सुकर मार्ग मिलता है। वस्तुतः प्रार्थना पर दिये गये ये प्रवचन मोक्ष मार्ग में पाथेय स्वरूप हैं। इनमें आचार्य श्री ने जीवन में प्रार्थना की उपादेयता पर विभिन्न उदाहरणों/दृष्टान्तों से आत्म-साधना में सहायक तत्त्वों को साधक-जिज्ञासु के लिये सहज रूप में प्रस्तुत किया है। प्रातः कालीन आदिनाथ स्तुति मानव-मात्र को सुख-शान्ति के साथ आत्म-ध्यान के पथ पर आरूढ़ करती है। आत्मा को परमात्मा से जोड़ने के मार्ग में आचार्य श्री के ये प्रवचन आत्म-साधक के लिये निश्चित ही अत्यन्त उपादेय हैं। आत्म-साधना में प्रार्थना, ध्यान और भक्ति आत्मा को निर्मलता प्रदान करती है।

—१९१०, खेजड़े का रास्ता, जयपुर-३०२ ००१

☐ संसार-मार्ग में मनुष्य को अपने से श्रेष्ठ अथवा अपने जैसा साथी न मिले तो वह दृढ़तापूर्वक अकेला ही चले, परन्तु मूर्ख की संगति कभी न करे।

—धम्मपद

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org